*International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)*
*ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714*
*www.ijhssi.org ||Volume 12 Issue 7|| July 2023 || PP. 161-164*

# रियासत काल में बेगार प्रथा–एक समग्र अध्ययन (पूर्वी राजस्थान के संदर्भ में)

डॉ. मीना अम्बेष
*प्रोफेसर*
*बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय, अलवर*

**सारांष**–राजपूताने की सभी रियासतों में बेगार प्रथा प्रचलित रही है। इस प्रथा के अन्तर्गत समाज के निचले वर्ग को बिना पारिश्रमिक दिया ही कार्य करवाया जाता रहा है। पूर्वी राजस्थान की रियासतें भी इससे अछूती नहीं रही है। पूर्वी की अलवर, भरतपुर, करौली व धौलपुर रियासत में इस प्रथा का विकराल रूप देखने को मिलता है। उक्त शोध पत्र में इस प्रथा का उद्भव व प्रसार तथा इसके विरोध में किये गये आन्दोलन का अध्ययन किया जायेगा।
**शब्द कुंजी**–बेगार प्रथा, बिना पारिश्रमिक, पूर्वी राजस्थान, बेगार का प्रादुर्भाव, अलवर, भरतपुर, करौली, धौलपुर।

**बेगार से अभिप्राय–** बेगार प्रथा राजपूताना के लगभग सभी राज्यों में विद्यमान रही है। मजदूरों, कारीगरों और श्रमिकों को शासकों और राज्याधिकारियों के लिए कार्य करने के लिये किसी भी समय और कितने ही समय तक के लिए बाध्य किया जा सकता था। यदि वे संतोषजनक ढंग से कार्य करने में असमर्थ रहते तो उन्हें सार्वजनिक रूप से कोडे लगाये जाते थे।

**बेगार का प्रादुर्भाव** – राज्य अथवा ठिकाने के सामने आये किसी भी संकट को रैयत समस्त समाज का संकट मानकर स्वेच्छा से बगार देती थी। जैसे युद्ध के समय अथवा युद्ध के उपरान्त, पुनर्निर्माण के काल में अथवा अकाल पड़ जाने पर या कोई अन्य विपत्ति आने पर रैयत सहर्ष स्वेच्छा से बेगार देती थी। बेगार के प्रादुर्भाव का एक कारण यह भी था कि प्राचीन काल में जब धातु–मुद्रा का चलन लगभग नहीं था, गांव में नाई, धोबी, कुम्हार, खाती, लुहार, दर्जी आदि को किसान वर्ष में निष्चित अनाज दे देता था और वे वर्ष भर राज्य और ठिकाने की सेवा करते थे। जागीर तथा खालसा क्षेत्र में इन सेवाकर्मियों तथा कारीगरों को कुछ भूमि दे दी जाती थी, जिससे कोई लगान या मालगुजारी नहीं ली जाती थी। वे सेवाकर्मी तथा कारीगर उसके बदले में अपनी सेवाएं देते थे अथवा आवष्यक वस्तुएं निःषुल्क पहुंचाने थे। उस समय वे लोग स्वेच्छा से तथा सदुभावनावष अपनी सेवाएं देते थे किन्तु कालान्तर में ये सेवाएं जागीरदार एवं राज्य कर्मचारी मुफ्त में लेने लग गए।

व्यक्तिगत श्रम के अलावा कृषि–दासों के लिए आवष्यक था कि वह बिना किसी पारिश्रमिक या ईनाम की आषा में काम करे। अपने श्रम के बदले उन्हें जो भुगतान प्राप्त होता था वह अपर्याप्त होता था। वायसरायों की राज्यों की यात्रा के अवसर पर इसका सबसे तीव्रतम रूप देखने को मिला।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में राजाओं और सामन्तों के रहन–सहन में भी भारी परिवर्तन आने लगा था। युद्धों का खतरा समाप्त हो चुका था। राजाओं के राज्य और सामनतों की जागीरें सुरक्षित हो गयी थी। अतः राजा अथवा सामन्त विलासी हो गये।

राजकुमार अथवा सामन्त पुत्र पाष्चात्य जीवन शैली से प्रभावित थे। पष्चिमी शैली की वेषभूषा, खान–पान, ब्रिटिष अधिकारियों के आगमन पर पष्चिम शैली की व्यवस्था आदि ऐसी घटनाएं थीं जिनका सामूहिक प्रभाव उनके रहन–सहन पर पड़ा। राजाओं तथा सामन्तों ने अपने महल और हवलियां पष्चिमी शैली में बनवाना तथा पष्चिमी शैली की सामग्री से उन्हें सजवाना आरम्भ कर दिया। नई जीवन पद्धति के लिए जो नई आवष्यकताएं उत्पन्न हुई, वे निरन्तर बढती रही और अपनी आवष्यकताओं को पूरा करने के लिए वे अपनी रैयत का शोषण करने लगे।

ब्रिटिष संरक्षण से पूर्व राजस्थानी राज्यों में संकट के समय रैयत स्वेच्छा से बेगार देती थी। राज्यों को विपत्ति के समय सहायता देना प्रजा का नैतिक कर्तव्य समझा जाता था। परन्तु 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक आते–आते यह एक परम्परा बन गई तथा खालसा व जागीरी ठिकानों में उसने वांछित सेवा का रूप ले लिया और वह बेगार बन गई जो अनिवार्य रूप से देनी पड़ती थी। जो भी व्यक्ति खालसा के गांव या जागीर में रहता और खेती या अन्य पेषा करता उसको यह परम्परागत बेगार देनी पड़ती थी। खालसा की अपेक्षा जागीरों में अधिक बेगारें थी। खालसा क्षेत्र में बेगार, राज्य का जो भी अधिकारी या कर्मचारी गांव में रहता था, वह लेता था और जागीर में जागीरदार तथा उसके परिवार के लोगों की बेगार करनी पड़ती थी तथा गांवों में जो जागीरदार के कर्मचारी रहते थे, उनकी बेगार करनी पड़ती थी।

ब्राह्मण और राजपूत बेगार से मुक्त थे। ब्राह्मण बेगार से इसलिए मुक्त थे क्योंकि वे पूज्य थे और राजपूत इसलिए मुक्त थे क्योंकि वे शासक जाति के जाति–भाई थे। अन्य सभी जातियों को अनिवार्य रूप से बेगार देनी पड़ती थी।

**बेगार प्रथा का प्रसार**–19वीं शताब्दी में राजस्थान के राज्यों द्वारा ब्रिटिष संरक्षण स्वीकार कर लेने के बाद आर्थिक व्यवस्था में तेजी से परिवर्तन आया। अंग्रेजों की आर्थिक नीतियों के कारण घरेलू व्यवसाय अथ्वा धन्धें समाप्त हो रहे थे। फलस्वरूप जनसंख्या का अधिकाधिक भाग कृषि भूमि पर निर्भर होता जा रहा था। कृषि पर बढ़ती हुई भीड़ अपेक्षाकृत कम मजदूरी ;वेतन अथवा अनाजद्ध पर भी काम करने को तैयार थी। अब कृषि श्रमिकों के पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो जाने के कारण सामन्तों अथवा राज्य का अपनी रैयत के प्रति व्यवहार कठोर होता गया। ऐसी स्थिति में सामन्तों अथवा राज्य द्वारा किसानों का शोषण स्वभाविक था और इस शोषण का भार उन किसानों पर भी पड़ रहा था, जो परम्परागत रूप से कृषि कार्य पहले से ही कर रहे थे। पुराने किसान खेती छोड़कर कहीं जा नहीं सकते थे, क्योंकि आय के अन्य स्रोत सूख रहे थे और नये श्रमिक किसी भी किमत पर काम क रके अपना तथा अपने परिवार का पेट भरना चाहते थे। ऐसी स्थिति में सामन्तों अथवा राज्य द्वारा अपनी रैयत से मनचाही बेगार लेना आसान हो गया।

रियासती काल में दलित जातियों से बेगार ली जाती थी। बेगार प्रथा करीब–करीब पूरे राजस्थान में प्रचलित थी। तत्कालीनप व्यवस्था में जो जाति सामाजिक दृष्टि से जितनी नीची होती थी उस जाति से उतनी ही अधिक बेगार ली जाती थी।

प्रत्येक गांव में एक चमार रहता था जो गांव में स्थायी रूप से रहने वाले राज कर्मचारी अथवा जागीर कर्मचारी का अवैतनिक सेवक होता था। लोगों को बुलाने, किसकों कितनी बेगार देनी है, इसका हिसाब रखने, बेगार देने के लिए उन्हें बुलाने, पषुओं के लिए चारा लाने, आवष्यकता पड़ने पर एक गांव से दूसरे गांव बोझा ले जाने, लकड़ी चीरने और ठिकाने के या सरकारी मकानों को वर्ष में दो बार लीपने के लिए इन्हें पकड़ा जाता था।
जिस गांव में भील नहीं होता, वहां पत्रवाक का काम भी इन्हीं से लिया जाता था। यह बेगारें खालसा क्षेत्र में भी ली जाती थी। इसके अतिरिक्त जागीरों में जब जंगल में घास कटती तो घास की बागर लगाना, खत्तियों और तहखानों में पड़े अनाज को धूप में सुखा कर वापस भरना, घोडों का दाना दलना, ठिकानें के नौकरों के जूते बनाना और उनकी मरम्मत करना तथा ठिकानों के घोड़ों के लिए चारा काट कर लाना चमार का काम माना जाता था। चमार को ये सारी सेवाएं मुफ्त देनी पड़ती थी अर्थात् इन सेवाओं के बदले उसे कोई मजदूरी नहीं मिलती थी।

बेगार प्रथा में महिलाओं को भी नहीं बख्शा जाता था। यदि वे संतुष्टिजनक कार्य नही ंकर पाते तो उनहें सरेआम पीटा जाता। बेगार में काम करने वाले बिना किसी वेतन की आषा में काम करते थे।

इसी प्रकार भरतपुर राज्य में भी जाटवों तथा अन्य दलित जातियों से तरह–तरह की बेगार ली जाती थी। भरतपुर में राजा–महाराजा द्वारा सर्दी के दिनों में बतख का षिकार किया जाता था। यह पक्षी पानी के किनारे ही अधिक बैठता था। दलित सर्दी में सुबह–सुबह ठण्डे पानी में उतर कर बतखों को उड़ाते थे ताकि षिकार करने वाले विषेष व्यक्ति इनका षिकार कर सके। दलितों को 5–6 घण्टे तक ठण्डे पानी में कन्धे तक डूकबते हुए खड़ा रहना पड़ता था। बतखों के मर जाने के बाद इनको दलितों द्वारा ठेडे पानी में घुसकर एकत्रित भी करना होता था। ठण्डे पानी के कारण दलितों के स्वास्थ्य पर बुत बुरा प्रभाव पड़ता था। कई बार षिकार करते समय गोली दलितों को लग भी जाती थी। इसके बदले में सरकार के द्वारा सिर्फ एक रुपये भुगतान किया जात ाथा तथा आने–जाने के लिए उन्हें कोई भत्ता नहीं दिया जाता था और वास्तविकता मे ंतो यह एक रुपया भी पूरा नहीं दिया जाता था।

**बेगार विरोधी आन्दोलन**– राजस्थान में सामाजिक भेदभाव के चलते दलितों को दुकानदार खाना नहीं देता था, धोबी उनके कपड़े नहीं धोता था तथा नाई उनके बाल नहीं काटता था। वे उच्च जातियों के व्यवसाय भी नहीं अपना सकते थे। इन्हें भगवान का प्रसाद ग्रहण करने तक की मनाही थी। इस भेदभाव के कारण दलित जातियों में भी उंच–नीच की भावना उत्पन्न हुई।

राजस्थान में दलितों के निवास गांव या नगर में नहीं होते थे बल्कि उन्हें गांव या नगर के बाहर रहना पड़ता था। राजस्थान में दलितों को सार्वजनिक सेवा से भी वंचित किया गया था। जैसे उन्हें सोने–चांदी के जेवर, अच्छे कपड़े पहनने देना, उत्सव आदि में देषी घी का प्रयाग ने करने देना, किसी सवारी, घोडें आदि का प्रयोग न करने देना।

इसके अलावा शादियों में घोड़े पर बारात निकालना, बाजे बजाना, जूते पहनकर गांव में निकलना आदि पर भी प्रतिबंध था। इसके अलावा वे सार्वजनिक तालाबों या कुओं से पानी नहीं भर सकते थे, पर्व व त्यौहार नहीं मना सकते थे तथा मंदिरों मे ंतो उनका प्रवेष सर्वथा वर्जित था। दलित अपनी मर्जी से खा नहीं सकते थे, 1922 में बूंदी में बलाई नामक दलित जाति को गेहूं का आटा खानना मना था। 1 अप्रैल, 1936 को जयपुर जिले के चकवाड़ा गांव में दलितों ने एक सामूहिक भोज का आयोजन किया जिसमें देषी घी के पकवान बनाये गये। उसी भोज में सामन्तवादियों ने यह कहते हुए रेत डाल दी कि देषी घी उंचें लोगों के लिए खाने के लिए है, दलितों के लिए नहीं।

भरतपुर राज्य प्रजा परिषद् ने अपनी स्थापना की शुरूआत से ही दलितों के उत्थान के दृष्टिकोण से बेगार प्रथा का जोरदार विरोध किया। जनवरी, 1947 में भरतपुर रियासत में राज्य प्रजा परिषद् द्वारा बेगार विरोधी आन्दोलन शुरू किया गया।

**बेगार विरोधी आन्दोलन**–भरतपुर राज्य प्रजा परिषद् ने अपनी स्थापना की शुरूआत से ही दलितों के उत्थान के दृष्टिकोण से बेगार प्रथा का जोरदार विरोध किया।

इस प्रथा को उन्मूलित करने के लिए राजनैतिक और गैर राजनीतिक संस्थाओं द्वारा विविध प्रयास किये गये। अलवर राज्य प्रजामण्डल, भरतपुर राज्य प्रजा परिषद्, करौली राज्य प्रजामण्डल और राजपूताना देषी राज्य परिषद् ने 23 और 24 नवम्बर 1928 को अपने अजमेर अधिवेषन में बेगार प्रथा के अन्मूलन हेतु प्रस्ताव पास किया तथा राजपूताना के

राजओं को प्रेरित किया कि वे इस प्रथा के विरूद्ध आवष्यक कदम उठायें। करौली में ''बेगारी विलाप'' नामक पुस्तक का प्रकाषन हुआ, जिसमें बेगार प्रथा पर घातक चोट की गई थी। ये मार्मिक पंक्तियां थी–

जिस अंगना का पति अभी पकडा गया बेगार में,
उसका बड़ा षिषु भी मर गया काम को सरकार में।
नवजात षिषु को पालती वह भी ओ पकड़ी गई
निज प्राण के अआधार को कर बंद ताले में गई।
बच्चा तड़पता है इधर, उतमात रोती है प्रभो
भोजन बिना कटता दिवस हा न्याय ये कैसा विभो।

करौली में कुंवर मानसिंह ने दैनिक ''कर्तव्य'', ''वर्तमान'', ''आज'', ''राजस्थान'' और ''तरूण राजस्थान'' आदि अखबारों में करौली रियासत की बेगार प्रथा पर लेख लिखना प्रारम्भ किया। बेगार प्रथा को समाप्त करवाने के लिए 28 फरवरी, 1924 से कुंवर मदनसिंह ने अपनी पत्नी के साथ सत्याग्रह प्रारम्भ किया। करौली रियासत में पहली बार कोई महिला सार्वजनिक तौर पर सत्याग्रह पर बैठी थी। मदनसिंह के साथी मुंषी त्रिलोक चन्द माथुर ने घोषणा की ''यदि सत्याग्रह करते–करते मदनसिंह देष के काम में आ गये, तो कुंवर साहब के स्थान पर वे अनषन पर बैठ जायेंगे।'' बेगारप्रथा के विरोध में करौली राज्य प्रजामण्डल ने प्रस्ताव पास किया कि 1. करौली राज्य द्वारा महाजनों, दर्जियों, नाईयों, कुम्हारों, तेलियों, कोलियों, काछियों, कसाईयों, खरातियों आदि जातियों से एवं किसानों से जाने वाली सब प्रकार की बेगारें बंद कर दी जानी चाहिए। 2. करौली राज्य के चमारों के साथ बेगार प्रथा बंद की जाये।

इसी तरह से भरतपुर प्रजा परिषद् की 08.12.1945 की सभा में मास्टर आदित्येन्द्र ने कहा ''बेगार बुरी बात है। इसीलिए प्रजापरिषद् ने इस बात को उठाया है कि जब तक यह बात पूरी नहीं हो जाती है तब तक इसे दूरे करने की कोषिष में लगी रहेगी। अभी षिकार के समय 700 चमार और कोली बेगार में बुलाये गये थे वे जाड़े की ठण्ड में पानी में नंगे बदन घुमाये गये। इन लोगों ने अपने असंतोष को दबा दिया, क्योंकि यह वे बोलेगे तो जेल में ठूंस दिए जाएंगे। इस भय की वजह से वह इस असंतोष के खिलाफ आवाज नहीं उठा सके, लेकिन प्रजा परिषद् को जेल का भय नहीं है, इसीलिए बेगार को दूर करने की मांग हमने रखी है।''

पूर्वी राजस्थान के कुछ सहृदय व सद्भावी शासकों ने इस प्रथा को समाप्त करने का प्रयास किया। अलवर राज्य में कानून द्वारा इस प्रथा पर रोक लगा दी गई। राज्याधिकारियों को चाहे वे गांव में हरते हों या शहर में, किसी भी रूप में और कहीं भी बेगार लेने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। भरतपुर महाराजा किषन सिंह ने रूपबास के पषुमेले के अपने उद्घाटन भाषण में में फरवरी 1927 को कहा, ''.....वह पहली चीज जो मैंने उनके ;चमारोंद्ध के लिए की है वह यह कि बेगार लेने की अमानवीय प्रथा को पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया। संभवतया कछ अधिकारी और दूसरे कुछ लोग अभी भी बेगार ले रहे हों इसीलिए मैं पुनः यह घोषणा करता हू कि भरतपुर राज्य में बेगार प्रथा पूर्णतया समाप्त की जा रही है। इस अवसर पर मैं बेगार देने वाली अपनी प्रिय प्रजा से अनुरोध करता हूं कि वे इस मामले में मेरी सहायता करे और उनसे बेगार लेने वाले मामलों की सीधी षिकायत करे ताकि शाही आज्ञाओं का उल्लंघन करने वालों को दण्डित किया जा सके।'' कानून द्वारा चमारों के दारूण कष्टों ने उनमें से कईयों को अपना घरबार छोड़ने के लिए बाध्य किया और उन्होंने निकटवर्ती क्षेत्रों में शरण ली। करौली में बेगार प्रथा यद्यपि कानून द्वारा निषिद्ध कर दी गई थी, लेकिन तब भी यह अपने तीव्रतम रूप में विद्यमान थी और इसका भार स्वभावतः दलित वर्गों पर पड़ता था। पूर्वी राजपूताना में शासकीय और गैर शासकीय प्रयासों के बावजूद यह प्रथा एक और दूसरे रूप में चलती रही।

1 जनवरी, 1947 को लोगों में बेगार विरोधी पर्चे बटवाये गये तथा वायसराय लार्ड़ वेलिस, देवास, धार और बीकानेर के शासक की, बतख के षिकार के लिए होने वाली 5 जनवरी 1947 की यात्रा के समय प्रदर्षन करने का निष्चय किया गया।

प्रजा परिषद् के कुछ कार्यकर्ता गांवों में भी गये ताकि दलितों को शहर में आने से रोका जा सके। परिषद् के कार्यकर्ताओं ने उच्चैण के दलितों को कुम्हेर भेजकर भरतपुर आने से भी रोका भी। जब बीकानेर के महाराजा शार्दूल सिंह भरतपुर पहुंचे तो अली मोहम्मद, जीवाराम, राज बहादुर आदि परिषद् के कार्यकर्ताओं ने बेगार विरोधी नारे लगाये। इस बेगार विरोधी आन्दोलन में दलितों ;जाटवोंद्ध ने भी भाग लेते हुए इसे अपना पूरा समर्थन प्रदान किया।

**निष्कर्ष**–इस प्रकार पूर्वी राजस्थान में बेगार की प्रथा प्रचलित रही जिसके माध्यम से समाज के निचले तबके का शोषण किया गया। लेकिन पूर्वी राजस्थान का चाहे वो शासक वर्ग हो, प्रजा परिषद् या प्रजामण्डल या अन्य कोई संगठन हो उसने बेगार प्रथा के विरोध में आन्दोलन चलाकर इस अमानवीय प्रथा के रोकथाम के प्रयास किए। हालांकि अभी भी गांवों में इस प्रथा को कुछ स्वरूप देखने को मिल जाता है।

## संदर्भ ग्रन्थ सूची


- व्यास, प्रकाष–राजस्थान का सामाजिक इतिहास, पृ. 167–168
- माथुर, के.सी.–स्ट्रगल फोर रेस्पोसिबल गवर्नमेंट इन जयपुर, पृ. 67
- प्रजासेवक–1 जून 1941, वर्ष एक अंक 29
- मिश्रा, एस.सी.–नेषनल मूवमेंट इन प्रिन्सली स्टेट, पृ. 217
- बहुजन संगठक, 7 से 13 अक्टूबर, 2002, अंक 26
- तेजप्रताप 28 अगस्त 1938, अंक 23, राजस्थान राज्य अभिलेखागार अलवर से प्राप्त
- चौधरी रामनारायण–राजपूताना टुडे, मॉर्डन रिव्यू, कलकत्ता, दिसम्बर 1928
- ईष्वरी प्रसाद–कु. मदनसिंह, पृ. 40–49